प्रथम सस्करण १०००

मुद्रक तथा प्रकाशक—श्री रामप्रताप शास्त्री

प्रकाशकीय

प्रस्तुत पुस्तक 'मीरांबाई' के सम्बन्ध में हिन्दी साहित्य सम्मेलन का) प्रकाशन है। इससे पूर्व श्री परशुराम चतुर्वेदी द्वारा सम्पादित , ाँबाई की पदावली' नामक पुस्तक प्रकाशित हो चुकी है। 'मीरांबाई' की क्ति ने हिन्दी साहित्य को किस प्रकार रस-सिक्त किया है, यह साहित्यानुरा- गों से अविदित नहीं है। यह ग्रन्थ दो खण्डों में विभक्त है १. (जीवन- रित) २. (आलोचना)। प्रथम खण्ड में मीरांबाई के जीवन के सम्बन्ध अनुसन्धानपूर्वक अनेक ज्ञातव्य बातों का परिचय कराया गया है और रे खण्ड में मीरांबाई की रचनाओं के साथ भक्तियुग में मीरा, उनकी प्रेम- भना और उनकी काव्य-कला के सम्बन्ध में परिमार्जित समीक्षा देकर हमारे द्वान् लेखक श्री डा० श्रीकृष्णलाल एम. ए., डी. फिल्. ने इस अभक्तियुग, सीलिए आत्म्यानामय काल में प्राचीन भक्ति परम्परा का स्मरण कराया है।

पुस्तक की उपादेयता तो विज्ञ पाठकों की सम्मति पर ही निर्भर है। किन्तु म इतना अवश्य कहेंगे कि सम्मेलन की मध्यमा और उत्तमा परीक्षा के परी- ार्थियों के ज्ञान-वर्द्धन में यह पुस्तक परम सहायक होगी।

क पूर्णिमा
२००६

ज्योतिप्रसाद मिश्र निर्मल
साहित्य मंत्री

स्वर्गीया स्नेहमयी जननी
की पुण्य स्मृति में—

श्रीकृष्ण लाल

दो शब्द

'मीराबाई' के प्रणयन का कार्य सन् १९४३ में ही गुरुवर डा० रामकुमार वर्मा के सुझाव से प्रारम्भ हो गया था, परन्तु बीच-बीच में कितनी ही बाधाओं के कारण, कई वर्षों बाद यह प्रकाशित हो रहा है। इन पांच-छः वर्षों में मुझे न जाने कितनी प्रेरणाएँ, कितने परामर्श और कितनी सहायता प्राप्त हुई, उन सबका उल्लेख आवश्यक नहीं है, फिर भी अपने हृदय का भार हलका करने के विचार से दो एक शब्द लिख देना अनुचित नहीं जान पड़ता। मेरे श्रद्धास्पद आचार्य डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा ने समय-समय पर जो प्रोत्साहन और अमूल्य परामर्श दिए, उनके बिना सम्भवतः इस ग्रंथ की रचना ही न हो पाती। उनकी कृपा और स्नेह का मैं इतना अभ्यस्त हो गया हूँ कि उनके लिए आभार-प्रदर्शन सम्भव नहीं जान पड़ता। सुहृद्वर डा० माताप्रसाद गुप्त ने अपना अमूल्य समय दे पाण्डुलिपि को भली भांति पढ़कर कुछ सुझाव दिए थे जिसके लिए मैं उनका ऋणी हूँ। मेरे प्रिय विद्यार्थी श्री नरेश कुमार मेहता, एम० ए०, ने 'वृहत् राग कल्पद्रुम' के गुजराती अक्षरों में छपे मीरां के पदों की प्रतिलिपि नागरी अक्षरों में कर मेरी सहायता की जिसके लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं। जिन जिन लेखकों की कृतियों से इस ग्रंथ के प्रणयन में सहायता ली गई है, उनका मैं आभारी हूँ। अन्त में मैं अपने मित्र श्री [illegible] प्रसाद शास्त्री, साहित्याचार्य और हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के साहित्य मंत्री श्री ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल' को अनेक धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने इसके प्रकाशन की व्यवस्था की।

विषय-सूची

प्रथम खंड

(जीवन-चरित)

द्वितीय खंड

(रचनाएँ तथा आलोचना)

जीवनी खंड

पहला अध्याय

प्रवेश

१

विक्रम की पन्द्रहवीं, सोलहवीं तथा सत्रहवीं शताब्दी में उत्तर भारत में भक्तिधर्म की प्रधानता थी। कितनी ही दृष्टियों से इस भक्तियुग का विशेष महत्व है और इस महत्वपूर्ण युग में भी मीराँबाई का विशिष्ट स्थान है। यह राजपूतों की वीरता का युग था—महाराणा सांगा और प्रताप, वीरश्रेष्ठ जयमल और पुत्ता, राव जोधा जी और मालदेव जैसे मानधनी वीरों की कीर्ति से सारा राजपूताना गूँज रहा था—और मीरा इस युग के रणबाँकुरे राठौर राव जोधा जी की प्रपौत्री, वीर जयमल की बहिन तथा सीसौदियों के सूर्य महाराणा सांगा की ज्येष्ठ पुत्रवधू थी; यह कबीर, दादू, नानक, रैदास तथा नरसी मेहता जैसे ईश्वरपरायण भक्तों का युग था और मीरा एक महान भक्त थी, यह एक अवतारी युग था जब गोसाईं तुलसीदास आदि कवि महर्षि वाल्मीकि के, गौराङ्ग महाप्रभु श्री चैतन्यदेव भगवान कृष्ण के, महात्मा हरिदास श्री ललिता सखी के और गोसाईं हित हरिवंश भगवान मुरलीधर की मुरली के अवतार समझे जाते थे और मीरा द्वापर युग की ब्रज-गोपी का अवतार प्रसिद्ध थी; यह हरिदास, तानसेन, बैजू बावरे तथा सूरदास जैसे गायकों का युग था और मीराबाई एक अलौकिक गायिका थी; यह सूरदास, तुलसीदास, विद्यापति तथा कबीर जैसे महाकवियों का युग था और मीरा एक जन्मजात कवि थी। सारांश यह कि मीराबाई इस युग का गौरव बढ़ाने वाली एक महान आत्मा थी।

२

आलवारा के पावन कंठ से निकली हुई भक्ति-धारा श्री रामानुज, म विष्णुस्वामी और निम्बार्क जैसे आचार्यों की प्रतिभा-सरस्वती के संयोग एक बाढ़-सी उमड़ कर दक्षिण भारत को रसमय करती हुई उत्तर की बढ़ी और कुछ ही समय में बंगाल और मध्यदेश भी इस भक्ति-धार प्रवाह से रसमय हो उठा। काशी में स्वामी रामानंद अपनी द्वादश शि मंडली के साथ 'जात-पाँत पूछै नहिं कोई, हरि को भजै सो हरि को हो का प्रचार कर रहे थे और पावन-भूमि ब्रज में एक ओर महाप्रभु वल्लभा अपने शिष्यों के साथ बाल-गोपाल-भक्ति का प्रसार कर रहे थे, दूसरी चैतन्यदेव के प्रिय शिष्य रूप, सनातन और जीव गोस्वामी माधुर्य भाव भक्ति-भावना से रस की धारा बहा रहे थे। दैवयोग से यह समय भी भ धर्म के प्रसार में विशेष सहायक प्रमाणित हुआ—विजेता यवनों से पददा और पीडित निराश हिन्दू जनता के लिये ईश्वर की भक्ति के अतिरिक्त चारा ही क्या था ? परंतु यह भक्ति-धारा राजपूताने की मरुभूमि में अ मार्ग खोजने में असमर्थ थी। वहाँ अब भी तलवार के पानी और रक्त के की होली खेली जाती थी, वहाँ अब भी मुंडमाली को मुंडमाल चढ़ाया ज था। राम और कृष्ण के स्थान पर वहाँ भाले और बर्छों की पूजा होती थी, और यमुना के स्थान पर वहाँ के वीर पुजारी 'शोणित के स्रोत' में स्नान अपना जीवन कृतार्थ करते थे और 'सुने रे निर्बल के बल राम' के स्थान पर

तन तलवाराँ तिलछियो, तिल तिल ऊपर सीव।
आलाँ घावाँ ऊठसी, छिन इक ठहर नकीब ॥[1]

के गीत गाये जाते थे। सच तो यह है कि भक्ति-धर्म की अग्नि-परीक्ष लिये राजस्थान की मरुभूमि ने जौहर की आग जला रक्खी थी। परंतु

---

[1] इस वीर का शरीर तलवार के घावों से टुकड़े-टुकड़े हो गया है और तिल पर मिला हुआ है। हे चारण ! तुम थोड़ी देर के लिए अपनी वीर वाणी बंद करो, तो यह वीर गीले घावों से उठ कर अभी फिर रण के लिए चला जायगा।

ग जहाँ प्रचण्डतम रूप से प्रज्वलित हो रही थी वहीं अचानक भक्ति-धर्म का
डा फहरा उठा। पत्थर पर दूब जमने की जो कहावत प्रसिद्ध है उसे चरितार्थ
र देख लोगों के आश्चर्य की सीमा न रही। अस्सी घावों के चिह्न जिसकी
रता के अद्भुत साक्षी थे उन्हीं राणा सांगा की प्रचंड तलवार के ठीक नीचे ही
र-भक्ति की एक अमर बेलि पल्लवित हो उठी। कौन जानता था कि खड्ग
रता के सबसे बड़े पुरोहित महाराणा सांगा की पुत्रवधू और उसके (खड्ग
ता के) सबसे बड़े पुजारी वीरश्रेष्ठ जयमल की बहन अचानक ही गा उठेगी :

श्री गिरधर आगे नाचूँगी ॥ टेक ॥

नाच नाच पिव रसिक रिझाऊँ, प्रेमी जन कूँ जाचूँगी।

तु सांवरे के रंग में रँगी हुई उस प्रेम-प्रतिमा की स्वर-लहरी ने केवल
र्भूमि राजस्थान को ही नहीं, सम्पूर्ण उत्तर-पश्चिम भारत को अपनी पावन
क्त-धारा से अभिसिंचित कर दिया।

राजस्थान में जिस धर्म और संस्कृति का प्रभाव था वह तलवार और
त-धारा की कठोर भित्ति पर स्थित था, परन्तु भक्ति-धर्म की नींव में मानव-
य की कोमल भावनायें निहित थीं। इसीलिये बंगाल की भावुक प्रकृति
भक्ति-धर्म का पूर्ण स्वागत किया और वहीं इस कामिनी-जनोचित धर्म की
र्ण प्रतिष्ठा हुई। बंगाल के पुरुष—चैतन्य और चंडीदास—में राधा-भाव की
र्णता मिलती है। दूसरी ओर राजस्थान की स्त्रियाँ तक—कर्मदेवी, जवाहर
ई इत्यादि—तलवार लेकर रक्त की नदियाँ बहाया करती थीं। इसी वैषम्य
कारण बंगाल में राजपूत धर्म की प्रतिष्ठा न हो सकी और राजस्थान
भक्ति-धर्म कभी पल्लवित न हो सका। परन्तु राजस्थान के जलवायु में
दा होकर वहाँ की संस्कृति और धर्म में पलकर, पुरुषोचित भावना के
तावरण में रहकर भी मीरां ने माधुर्य भाव की भक्ति का जो चरम विकास
दर्शित किया, वह मानव जाति के इतिहास में एक अद्भुत घटना है।
गाल जैसे सुदूर प्रांत से आकर जिन रूप, सनातन और जीव गोस्वामी
व्रजभूमि में माधुर्य भाव की रस-धारा उमड़ा दी थी, उन्हें भी मीरां
भक्ति भावना के सम्मुख नत मस्तक होना पड़ा था। मीरां और जीव

गोस्वामी के सम्बध में जो जनश्रुति[1] प्रसिद्ध है, वह सम्भव है वास्त सत्य न भी हो, परतु रूपक के रूप में उसकी सत्यता असदिग्ध सूर आदि कवियो ने भ्रमरगीत के द्वारा ज्ञान और योग से भक्ति जो श्रेष्ठता प्रमाणित करने का प्रयास किया, उसे साधारण जनता योगी और महाज्ञानी जीव गोस्वामी को भक्त मीरॉ के सामने निरुत्त दिखाकर इस जनश्रुति द्वारा अत्यत सरल रीति से प्रमाणित कर दिया मीरॉ भक्ति-भावना की प्रतीक हैं, उनका जीवन ही भक्ति-साधना है औ उनकी कविता मे उसकी चरम सिद्धि है।

३

मीरॉबाई का इतिहास और जीवन-वृत्त हिन्दी के अन्य महाकवियो व भॉति एकदम अनिश्चित नहीं है। यह सच है कि हम निश्चित रूप यह नहीं कह सकते कि मीरॉबाई किस सवत् मे अवतरित हुईं, अथवा क और कैसे उन्होंने यह नश्वर देह छोडा परतु यही तो सब कुछ जान नहीं है। जो जानना आवश्यक है वह तो यह है कि वे किस युग, किस वंश किस वातावरण मे अवतरित हुईं उनकी शिक्षा और दीक्षा किस प्रक की हुई, उनके जीवन मे कितने सघर्ष किस रूप में उपस्थित हुए औ उन सघर्षों को उन्होंने किस रूप में कितनी सफलता के साथ झेला मीरॉ के सम्बध में इन सभी आवश्यक बातो का निश्चित ज्ञान प्राप्त करन कुछ कठिन नहीं है। दैवयोग से वे राजपूताने के एक प्रसिद्ध राजकुल उत्पन्न हुई और एक अतिप्रसिद्ध राजकुल में उनका विवाह हुआ। राजस्था

१—कहा जाता है कि मीरा वृन्दावन मे भक्त-शिरोमणि जीव गोस्वामी के दर के लिए गई थी। गोस्वामी जी सच्चे साधु थे और स्त्रियों की छाया तक स भाग थे, इसलिए भीतर से ही कहला भेजा कि हम स्त्रियो से नही मिलते। इसपर मीरॉब ने उत्तर दिया कि मैं तो समझती थी वृदावन मे श्रीकृष्ण जी ही एक मात्र पुरुष परतु यहा आकर जान पडा कि उनका एक और प्रतिद्वदी पैदा हो गया है। मी का ऐसा माधुर्य-भाव से युक्त प्रेमपूर्ण उत्तर सुनकर जीव गोस्वामी नगे पैर बाहर निक आए और बडे ही प्रेम से मीराबाई से मिले।

के इतिहास में उनके पितृकुल और श्वसुर-कुल की वीरता स्वर्ण अक्षरों में अंकित है; उनकी शिक्षा-दीक्षा और जीवन-संघर्ष का इतिहास उनके पदों में मिलता है, उनके जीवन के सौन्दर्य, सफलता और विजय का इतिहास साहित्य और जनश्रुतियों में बिखरा पड़ा है। यदि थोड़ी कल्पना और अनुमान का सहारा लिया जाय तो मीरोंबाई का इतिहास और जीवन-वृत्त निश्चित रूप से उपस्थित किया जा सकता है। अनुमान शब्द सुनकर चौंकने की आवश्यकता नहीं। जहाँ सत्य की खोज के लिए अन्य कोई साधन अप्राप्य है, वहाँ अनुमान ही एकमात्र सहारा है।

दूसरा अध्याय

आधार और सामग्री

१

अन.साक्ष्य—मीराँ के जीवन-वृत्त-विचार के लिए, सबसे पहले, उनके नाम से प्रसिद्ध पदो की ओर ध्यान जाता है। मीराँ की रचनाओं में ऐसे पद पर्याप्त सख्या में मिल जाते हैं जिनमे उनकी जीवन सम्बधी बातो का स्पष्ट निर्देश मिलता है। परतु उनकी प्रामाणिकता असदिग्ध नहीं है। उन पदों में प्रधान रूप मे दो विषयो का निर्देश मिलता है—एक तो सत रैदास तथा उनके शिष्यों के सत्सग का प्रभाव और मीराँ की वैराग्य-प्रवृत्ति, दूसरे राणा द्वारा किए गए असफल अत्याचारो का वर्णन। काव्य-वस्तु की दृष्टि से विचार करने पर उन पदो का मीराँ द्वारा लिखा जाना असम्भव नहीं है। गोसाईं तुलसीदास ने भी कवितावली और विनयपत्रिका मे ऐसे छद और पद पर्याप्त सख्या में लिखे हैं जिनमें उनकी जीवन-सम्बधी बातो का स्पष्ट निर्देश मिलता है और उनकी प्रामाणिकता में किसी को भी सदेह नहीं है। परतु मीराँ के इन पदो के सम्बध में सदेह होना स्वाभाविक है। कुछ पद तो ऐसे हैं जो मीराँ के लिखे हो ही नही सकते। एक उदाहरण लीजिए .

म्हारे सिर पर सालिगराम, राणा जी म्हारो काई करसी ॥टेक॥
मीरा सूँ राणा ने कही रे, सुण मीरा मोरी बात।
साधो की सगत छोड दे रे, सखियाँ सब सकुचात ॥ १ ॥
मीरा ने सुन यों कही रे, सुन राणा जी बात।
साध तो भाई बाप हमारे, सखियाँ क्यूँ घबरात ॥ २ ॥
जहर का प्याला भेजिया रे, दीजो मीरा हाथ।
अमृत करके पी गई रे, भली करे दीनानाथ ॥ ३ ॥

मीरा प्याला पी लिया रे, बोली दोउ कर जोर।
तैं तो मारण की करी रे, मेरो राखणहारो ओर ॥ ४ ॥
आधे जोहड़[1] कीच है रे, आधे जोहड़ हौज।
आधे मीरा एकली रे, आधे राणा की फौज ॥ ५ ॥
काम क्रोध को डाल के रे, सील लिये हथियार।
जीती मीरा एकली रे, हारी राणा की धार[2] ॥ ६ ॥
कांचगिरी[3] का चौतरा रे, बैठे साध पचास।
जिनमें मीरा ऐसी दमके, लख तारों में परकास ॥ ७ ॥

[मीरा की शब्दावली, बेलवेडियर प्रेस संस्करण पृ० ४०-४१]

इस पद की ध्वनि कुछ ऐसी है जो इसे मीरां-रचित होने में संदेह उपस्थित करती है। विशेषकर अंतिम दो चरण 'कांचगिरी का चौतरा रे' इत्यादि तो मीरा की लेखनी से उद्भूत हो ही नहीं सकते। इसी प्रकार मीरां तथा उनकी सास और ननद की बातचीत जिन पदों में दी गई है, उनके मीरां-रचित होने में पूर्ण संदेह है। एक उदाहरण देखिए :

[ऊदा] भाभी मीरा कुल ने लगाई गाल[4],
ईडर गढ़ का आया जी ओलबा[5]।
[मीरा] बाई ऊदा थारे म्हारे नातो नाहि,
बासो बस्या का आया जी ओलबा[6] ॥१॥
[ऊदा] भाभी मीरा साधां का संग निवार,
सारो सहर थारी निन्दा करै।
[मीरा] बाई ऊदा करे तो पड़ना भख मारो,
मन लागो रमता राम में ॥२॥

[वही पृ० ३७-३८]

ये पद तो नौटंकियों के परस्पर वार्तालाप जैसे जान पड़ते हैं। इनका मीरां द्वारा लिखा जाना किसी प्रकार सम्भव नहीं जान पड़ता।

---

१ [illegible]। २ [illegible]। ३ [illegible]। ४ [illegible]। ५ उलाहना।
६ [illegible]।

अत.साक्ष्य के इन पदों मे एक विशेष बात यह है कि इनम एक ही बा कितने ही पदों में कितनी ही तरह से कही गई है। राणा के विष का प्याल भेजने का उल्लेख लगभग डेढ दर्जन पदों में मिलता है। इसी प्रकार सतगु के रूप मे रैदास का उल्लेख भी लगभग आधे दर्जन पदा मे है। इस पुनरुक्ति से दो ही निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं—या तो मीराँ के पास विषय का इतन अभाव था कि वे एक ही बात को अनेक प्रकार से कहने को बाध्य थीं, अथव उन्होंने दो ही एक पद इस विषय पर लिखे होंगे, बाद में अन्य कवियों ने जाने किस भावना से प्रेरित हो इसी विषय पर कितने ही पद कुछ परिवर्त और परिवर्धन के साथ मीराँ के नाम से लिख कर प्रचलित करा दिए। पिछल सम्भावना ही अधिक जान पडती है क्योंकि यह विषय कुछ ऐसा है जिस प विषयाभाव होने पर भी मीराँ ने पुनरुक्ति न की होगी। फिर इन पदा में कहीं कहीं 'साप-पिटारा' भेजने तथा 'सूल-सेज' पर सुलाने का भी उल्लेर मिलता है। यथा

मीरा मगन भई हरि के गुण गाय ॥ टेक ॥
साँप पिटारा राणा भेज्या, मीरा हाथ दियो जाय ॥
न्हाय धोय जब देखण लागी, सालिगराम गई पाय ॥
जहर का प्याला राणा भेज्या अमृत दीन्ह बनाय ॥
न्हाय धोय जब पीवण लागी, हो अमर अँचाय[1] ॥
सूल सेज राणा ने भेजी, दीज्यो मीरा सुलाय।
साँझ भई मीरा सोवण लागी, मानो फूल बिछाय ॥

[मीरा की शब्दावली बेलवेडियर प्रेस संस्करण पृ० ६८

और भी	राणा जी म्हाँरी प्रीत पुरबली मैं क्या करूँ ॥ टेक ॥

× ×	× ×	× ×

विष का प्याला भेजिया जी जावो मीरा पास।
कर चरणामृत पी गई, म्हाँरे राम जी के विस्वास ॥ २ ॥

× ×	× ×	× ×

पेयो[1] वासक[2] भेजिया जी, ये है चन्दन हार।
नाग गले में पहिरिया, म्हांरो महल भयो उजार ॥ ५ ॥

[मीरा की शब्दावली, बेलवेडियर प्रेस संस्करण पृ० १

परन्तु 'साप पिटारा' तथा 'सूल सेज' का उल्लेख न तो नाभादास के छप्पय
है और न प्रियादास के कवित्तों में। नाभादास ने केवल एक ही छप्पय म
के सम्बन्ध में लिखा था, इसलिए सम्भव है कि स्थानाभाव के कारण वे इन
उल्लेख न कर पाए हों, परन्तु प्रियादास को तो स्थान का अभाव न था। उन
तो दश कवित्तों में कितनी ही बातों का उल्लेख किया है और यदि उ
समय में मीरा के पास 'साप पिटारा' भेजने तथा उनको 'सूल सेज' पर सुु
की कथा का प्रचार होता अथवा उपर्युक्त दोनों पद मीरा के ही लिखे होते
वे इनका उल्लेख करना कभी न भूलते। फिर रघुराजसिंह-रचित भक्तमा
में जो विविध जनश्रुतियों का अत्यधिक विस्तार मिलता है उसमें भी '
पिटारा' और 'सूल सेज' का उल्लेख नहीं है। इससे यह बात निश्चित म
प्रमाणित हो जाती है कि उपर्युक्त दोनों पद मीरा की रचना नहीं है, वरन् म
की मृत्यु के बहुत दिनों पश्चात् प्रियादास के समय के उपरान्त जब भक्त म
के सम्बन्ध में नए-नए कथा-प्रसंगों और गीत तथा पदों की सृष्टि हो रही थी,
समय उनके किसी भक्त ने इन पदों की रचना करके जनता में प्रचलित
दिया जो कालान्तर में मीरा-रचित माने जाने लगे। फिर उपर्युक्त दोनों
में पहले में पिटारे का सांप शालिग्राम की मूर्ति बन जाता है परन्तु दूस
वासक (वासुकि नाग) चन्दन हार के रूप में परिवर्तित होकर महल
उजाला करता है। ये दोनों परस्पर विरोधी बातें सत्य नहीं हो सकतीं इ
एक तो अवश्य ही असत्य है और अधिक सम्भव है कि दोनों ही असत्य
सत्य तो यह है कि ये दोनों ही पद मीरा के लिखे नहीं हैं।

मध्यकालीन उत्तर भारत में प्रमुख भक्तों और महापुरुषों की स्मृति ब
गीतों, कथा-वार्ताओं और प्रसंगों तथा रूपकों द्वारा पोषित रही जाती

---

[1] पाठान्तर पिटारा। [2] वासुकि नाग साप।

कवि और गायक गीतों और पदों में उन महात्माओं की कीर्ति गाते फिरते थे; वृद्धगण उनके सम्बंध में अनेक कथा और प्रसंग उत्सुक श्रोताओं को सुनाते रहते थे और संगीत अथवा नौटंकियों के छंदबद्ध वार्तालापों में उनके जीवन के प्रमुख प्रसंग रूपकों के रूप में प्रदर्शित किए जाते थे। गोपीचंद, पूरन भक्त, और हकीकत राय के रूपक पंजाब में अब तक प्रचलित हैं। संयुक्त प्रांत के पूर्वी भाग में अब तक जोगी और फकीर गोपीचंद और भरथरी के गीत गा-गा कर भीख माँगते हैं। राजस्थान में मीराँबाई के जीवन से सम्बंध रखनेवाले कितने ही रूपक प्रचलित रहे होंगे जो पर्वो और त्योहारों के अवसर पर जनता के सामने खेले जाते होंगे। साथ ही रमते योगी और फकीर, गायक और चारण, उनके सम्बंध में विविध प्रकार के गीत और पद गा-गा कर जनता को मुग्ध करते रहे होंगे। स्त्रियों में मीराँ का विशेष रूप से अधिक प्रचार था। कालांतर में कितने ही गीत और पद, रूपकों के कितने ही छंदबद्ध वार्तालाप मीरां के नाम से जनता में प्रचार पा गए होंगे। यह कोरा अनुमान ही नहीं है, इसका एक प्रत्यक्ष प्रमाण 'साहित्य-रत्नाकर' नामक संग्रह-ग्रंथ में मिलता है। गुजरात के श्री कहान जी धर्मसिंह ने 'साहित्य-रत्नाकर' नामक दो जिल्दों में हिन्दी की प्राचीन कविताओं का संग्रह प्रकाशित किया जिसकी तृतीयावृत्ति १९२६ ई० में हुई। इसके प्रथम भाग में पृ० ४१७-१८ पर मीराँबाई के नाम से तीन छंद, १ दोहा और दो कवित्त दिए गए हैं जिनमें दोनों कवित्त इटावे के प्रसिद्ध कवि देव जी की रचनाएँ हैं जो संभवतः मीराँ की प्रशंसा में लिखे गये थे। देव कवि के नाम पर भी कितने कवित्त और सवैया उसमें संग्रहीत हैं जिससे जान पड़ता है कि देव-रचित इन कवित्तों को संग्रहकर्ता मीराँ-रचित ही समझता था। ठीक इसी प्रकार की भूलें मीराँ के इन पदों के सम्बंध में भी हुई हैं। बेलवेडियर प्रेस में प्रकाशित 'मीराबाई की शब्दावली' में 'मीराबाई और कुटुम्बियों की कहा सुनी' के अंतर्गत जो छंदबद्ध वार्तालाप मिलते हैं, वे सम्भवतः मीराँबाई के जीवन सम्बंधी रूपकों और नौटंकियों के अवशेष हैं और अन्य पद भी इसी प्रकार भूल से उनकी रचना में स्थान पा गए हैं।

अस्तु, जिन पदों में मीराँ की जीवन-सम्बंधी बातों का स्पष्ट निर्देश मिलता

है, अतःसाक्ष्य के वे पद अधिकांश मीरां की रचनाएँ नहीं हैं। परंतु ·
प्रकार के सभी पदों को सहसा अप्रामाणिक मानना भी ठीक नहीं है
कुछ पद तो मीरां के ही लिखे जान पड़ते हैं, परन्तु निश्चित रूप से कुछ क
नहीं जा सकता। उदाहरण के लिए देखिए :

गणा जी मैं तो गोविंद का गुण गास्यों ॥टेक॥
चरणामृत का नेम हमारे, नित उठ दरसन जास्या ॥१॥
हरि मन्दिर में निरत करास्यों, घूंघरिया घमकास्या ॥२॥
राम नाम का जहाज चलास्या, भवसागर तर जास्या ॥३॥
यह संसार बाड का कांटा, ज्या संगत नहिं जास्यों ॥४॥
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, निरख परख गुण गास्यों ॥५॥
[मीराबाई की शब्दावली, बेलवेडियर प्रेस संस्करण पृ० ६

यह पद मीरा का ही लिखा जान पड़ता है। इस प्रकार के कुछ सम्भवतः मीरा ने लिखे होंगे परन्तु ज्यों-ज्यों उनकी कीर्ति बढ़ने लगी, त्यों उनके सम्बन्ध में नई-नई जनश्रुतियों का प्रचार बढ़ने लगा और उन्हीं के · रूप मीरा के नाम से नए-नए पदों का प्रचार भी होने लग गया। इन नए से मीरां के पदों को छांट निकालना यदि असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य अतः इन पदों को अंतःसाक्ष्य के रूप में स्वीकार करना ठीक नहीं है, फि इनसे यदि साक्ष्य का उपयोग तो किया ही जा सकता है और यही उ उपयुक्त भी है।

अंतःसाक्ष्य के इन पदों के अतिरिक्त शेष अगणित पदों से मीरा की : भावना का अद्भुत प्रवाह मिलता है जिनमें उनकी जीवन-सम्बन्धी बात निर्देश नहीं है, फिर भी इन शेष पदों से कवि के जीवन पर यथेष्ट प्र पड़ता है। इनमें कुछ पद तो ऐसे भी हैं जिनमें कवि ने अपनी सन्नि-न के आवेश में अपने जीवन की ओर भी संकेत किया है। यथा :

तेरो कोई नहिं रोकणहार मगन होइ मीरा चली। टेक
लाज, सरम कुल की मर्यादा सिर सें दूर करी।
मान अपमान दोऊ धर पटके निकसी हूं ग्यान गली ॥१॥
× ×   × ×   × ×

सेज सुखमणा मीरा सोहै, सुभ है आज घरी।
तुम जाओ राणा घर अपणे, मेरी तेरी नाहिं सरी ॥४॥

[मीरा मन्दाकिनी पद १०९ पृ० ७१]

अथवा— आली री मेरे नैनन बान पड़ी।टेक॥
चित चढ़ी मेरे माधुरी मूरत, उर बिच आन अड़ी ॥१॥
× × × × × ×
मीरा गिरधर हाथ बिकानी, लोग कहै बिगड़ी ॥४॥

[मीराबाई का पदावली बे० प्र० ० ००]

परंतु मीराँ के पदों में उनके आध्यात्मिक विकास का जो क्रमिक इतिहास मिलता है वह वास्तव में महत्वपूर्ण है। मीराँ के पदों का सूक्ष्म विश्लेषण करने पर हमें चार-पाँच विशिष्ट धाराओं के पद मिलते हैं। सबसे पहले नाथ सम्प्रदाय के योगियों के प्रभाव से प्रभावित होकर मीरा के कितने ही पद 'जोगी' के सम्बन्ध में मिलते हैं। एक प्रसिद्ध उदाहरण देखिए

जोगी मत जा मत जा मत जा, पाय परूँ मैं चेरी तेरी हौं।
प्रेम भगति को पैंडो ही न्यारो, हमकू गैल बता जा।
अगर चन्दन की चिता रचाऊ, अपणे हाथ जला जा।
जल जल भई भस्म की ढेरी, अपने अंग लगा जा।
मीरा कहे प्रभु गिरधर नागर, जोत में जोत मिला जा।

[मीराबाई की शब्दावली पृ०९८]

फिर संतों के प्रभाव से प्रभावित संसार और जीवन की नश्वरता प्रकट करने वाले भजन के पद मिलते हैं। एक उदाहरण देखिए

भज मन चरन कँवल अविनासी ॥टेक॥
जेताइ दीसे धरनि गगन बिच, तेताइ सब उठि जासी ॥
कहा भयो तीरथ व्रत कीन्हे, कहा लिए करवत कासी ॥१॥
इस देही का गरब न करना, माटी में मिल जासी।
यो संसार चहर की बाजी, साँझ पड्याँ उठि जासी ॥२॥

[मी० श० बे० प्र० पृ० ०-०]

फिर आगे बढ़कर उसी प्रभाव में प्रभावित रहस्योन्मुख विरह के पद मिलते हैं। यथा:

हेरी मैं तो प्रेम दिवानी मेरा दरद न जाणै कोय ॥टेक॥
सूली ऊपर सेज हमारी, किस बिध सोणा होय।
गगन मंडल पे सेज पिया की, किस बिध मिलणा होय ॥१॥

[मी० शब्दा० बे० प्रे० पृ० ४]

तीसरे भागवत के प्रभाव से प्रभावित श्रीकृष्ण लीला और विनय के पद मिलते हैं जो सूरदास के पदों से समानता रखते हैं। उदाहरण के लिए देखिए:

मेरो मन बसिगो गिरधर लाल सों ॥टेक॥
मोर मुकुट पीताम्बरो, गल बैजती माल।
गउवन के सँग डोलत हो जसुमति को लाल ॥१॥

[मी० शब्दा० बे० प्रे० पृ० ०]

और विनय के पद:

मन रे परसि हरि के चरण ॥टेक॥
सुभग सीतल कँवल कोमल, त्रिविध ज्वाला हरण।
जिण चरण प्रह्लाद परसे, इंद्र पदवी धरण ॥१॥

[मी० शब्दा० बे० प्रे० पृ० ७]

विनय और लीला के पदों के अतिरिक्त विरह के पद भी मिलते हैं जिनमें कृष्ण-कान्त के विप्रलम्भ शृंगार की झलक मिलती है। यथा:

डारि गयो मनमोहन पासी ॥टेक॥
आँबा की डालि कोइल इक बोलै, मेरो मरण अरु जग केरी हाँसी।
बिरह की मारी मैं बन बन डोलूं, प्रान तजूं करवत ल्यूं कासी।
मीरा के प्रभु हरि अबिनासी, तुम मेरे ठाकुर मैं तेरी दासी ॥

[मी० की पदावली डि० मा० [illegible] पृ० ३४-३५]

अन्त में कृष्ण के प्रेम में तन्मय होकर मीरा गिरधरलालमय हो जाती है और उनके कंठ से उल्लास भरे पद फूट निकलते हैं जिनमें माधुर्य भाव की मधुर अभिव्यक्ति मिलती है। यथा

मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई।
जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई ॥

अथवा कहाँ कहाँ जाऊँ तेरे साथ कन्हैया।
बसी केरे बजैया कन्हैया।
बृदावन की कुज गलिन में गहे लीनो मेरो हाथ कन्हैया ॥ इत्यादि
[राग कल्पद्रुम प्रथम भाग पृ० ६६१

इन विविध प्रकार के पदो मे मीराँ के जीवन पर विविध प्रभाव और उसके परिणाम-स्वरूप उनके आध्यात्मिक जीवन के विकास-क्रम का सुद इतिहास मिलता है। सत-प्रभाव से प्रभावित होकर ससार की नश्वरता और ईश्वर-भक्ति की मारता प्रकट करती हुई उनकी प्रतिभा रहस्योन्मुखी हो उठती है, फिर भागवत के प्रभाव से कृष्ण-लीला, विनय के पद और विप्रलम्भ शृगार से प्रारम्भ होकर उनके पदों मे उस तन्मयता और प्रेम का परिच मिलता है जो आध्यात्मिक अनुभूति का चरम विकास है और जो साहित्य म गोपी-भाव अथवा राधा-भाव के नाम से प्रसिद्ध है।

२

बहि.साक्ष्य—मीराँबाई के जीवन-वृत्त-सम्बधी बहि.साक्ष्यो में सबसे अधिक प्रामाणिक ग्रथ नाभादास-रचित 'भक्तमाल' है, जिसकी रचना स० १६४२ के पीछे किसी समय हुई थी। उस समय तक मीराँबाई को मरे अधिक दिन नहीं हुए थे—शायद सब मिलाकर वीस वर्ष भी न बीत पाए थे। इसलिए उसरे मीराँ के सम्बध मे निकट सत्य जानने की पूरी सम्भावना थी। परतु दुर्भाग्य से 'भक्तमाल' में मीराँ के सम्बध में केवल एक ही छप्पय मिलता है। परतु वह एक ही छप्पय इतना अर्थगर्भित और गम्भीर है कि उससे कवि के जीवन प पर्य्याप्त प्रकाश पडता है। वह छप्पय इस प्रकार है :

लोक लाज कुल शृखला तजि मीराँ गिरधर भजी।
सदृश गोपिका प्रेम प्रकट कलियुगहिं दिखायो।
निर अकुश अति निडर रसिक जस रसना गायो ॥

दुष्टनि दोष विचारि मृत्यु को उद्यम कीयो।
बार न बांको भयो, गरल अमृत ज्यों पीयो॥
भक्ति निसान बजाय कै, काहू तें नाहिन लजी।
लोक लाज कुल शृंखला तजि मीरा गिरधर भजी॥

इसमें मीरा की भक्ति-भावना की प्रशंसा की गई है। 'गरल अमृत ज्यों पीयो' में एक अलौकिक घटना का उल्लेख किया गया है जो बिलकुल असम्भव भी नहीं कहा जा सकता।

'भक्तमाल' के पश्चात् गुसाईं हित हरिवंश के प्रसिद्ध विद्वान् शिष्य हरिराम व्यास की 'बानी' के पदों में कुछ समकालीन भक्तों का उल्लेख है जिनमें मीराबाई भी एक हैं। एक पद इस प्रकार है :

बिहारिहिं स्वामी बिन को गावै ?
बिनु हरिवंशहि राधिकावल्लभ को रस रीति सुनावै ?
रूप सनातन बिनु को वृन्दा विपिन माधुरी पावै ?
कृष्णदास बिनु गिरधर जू को को अब लाड़ लड़ावै ?
मीराबाई बिनु को भक्तनि पिता जान उर लावै ?
स्वारथ परमारथ जैमल बिनु को सब बंधु कहावै ?
परमानंद दास बिनु को अब लीला गाय सुनावै ?
सूरदास बिनु पद रचना को कौन कविहि कहि आवै ?

इस पद की ध्वनि से ऐसा जान पड़ता है कि इसकी रचना उस समय हुई थी जब इसमें उल्लिखित सभी भक्त स्वर्ग सिधार चुके थे। परन्तु इसमें परिगणित सभी भक्त व्यास जी के समकालीन थे और उनसे व्यास जी का परिचय भी अवश्य रहा होगा। इस पद में भावुकता कूट-कूट कर भरी है जिससे स्पष्ट पता चलता है कि भक्तों की जिन विशेषताओं का उल्लेख इसमें किया गया है वे केवल सुनी सुनाई नहीं कवि की स्वयं अनुभूत हैं। व्यास जी सं० १६२२ के आसपास किसी समय गुसाईं हित हरिवंश के शिष्य हुए थे। इसके पहले वे ओड़छा के महाराज मधुकर शाह के राजगुरु थे। अस्तु, रूप-सनातन, कृष्णदास, मीराबाई, जैमल, परमानन्ददास और सूरदास आदि भक्तों का परिचय उन्होंने

स०१६२२ के आसपास अथवा कुछ बाद में प्राप्त किया होगा। मीराँबाई अतिरिक्त अन्य सभी भक्तों का स० १६२२ तक जीवित रहने का निश्चय- है, अस्तु इस पद से यह निष्कर्ष निकालना अनुचित न होगा कि मीराब भी स० १६२२ के आसपास तक जीवित थी।

हरि-भक्तों को पिता समझ कर हृदय से लगाना मीराँबाई की ही विशेष थी। मीराँ के चरित्र की यह पवित्रता और उच्चता, सरलता और विनम्र उनके काव्य में प्रतिबिम्बित हुई है।

'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में भी मीराँबाई के सम्बध में कुछ बाते मिल है। यह प्राचीन वार्ता ग्रंथ गुसाईं गोकुलनाथ द्वारा स० १६२५ में लि माना जाता है। इसकी प्रामाणिकता के सम्बध में विद्वानों का सदेह रहा अभी कुछ ही दिनो पहले विद्या-विभाग कॉकरोली में प्रकाशित 'प्राचीन व रहस्य द्वितीय भाग की भूमिका में इस ग्रथ को प्रामाणिक प्रमाणित करने चेष्टा की गई है और इन वार्ताओं के सम्बध में कुछ नई बाते भी बत गई है। 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' तथा 'दो सौ बावन वैष्णवन की व के तीन सस्करण माने जाते हैं। मूल रूप में इन वार्ताओं का जन्म मौ कथन और प्रवचन द्वारा हुआ। श्री गोकुलनाथ जी कथा-प्रवचनों में ' चरित्र, गुरु वार्ता और सेवकों से सम्बध रखने वाले चरित्र (वार्ता के प्र वर्णन करते थे।' इस प्रथम सस्करण का समय स० १६४२ से१६४ माना गया है। इसके कुछ समय पश्चात् 'सग्रह की साहजिक मानवीय वृत्ति ने उन्हें सुरक्षित रखने के लिए एक अव्यवस्थित लिखित स्वरूप जिसका समय स० १६६४ से १७३५ तक माना जाता है। यह सस्करण था जिसमें ८४ और २५२ वैष्णवों का वर्गीकरण किया और गोकुलनाथ जी के शिष्य हरिराय ने वार्ताओं में गोकुलनाथ जी व निर्देश किया। तीसरा सस्करण श्री हरिराय जी के समय में हुआ समय हरिराय ने 'भाव प्रकाश नामक टिप्पण भी लिखा। इस प्रकार व को प्रामाणिक प्रमाणित अवश्य किया गया परतु इतिहास और जीव के लिए इसकी उपयोगिता नगण्य है। इसका कारण यह है कि ये व

तुन कुछ पुष्टि मार्ग के पुराण हैं जिनमें अलौकिक और चमत्कारिक बातों का समावेश है। केवल एक उदाहरण पर्याप्त होगा। श्री आचार्य जी महाप्रभून के सेवक कृष्णदास मेघन छत्री तिनकी वार्ता के प्रथम प्रसंग में मिलता है।

"बहुरि बद्रिकाश्रम तें आगे पधारे तहाँ ... सो समय नाहीं है। तहाँ वेदव्यास जी को स्थान है ... । तब कृष्णदास सों कह्यो तीन ठाड़े रहियो। तब श्री आचार्य जी महाप्रभु आगे पधारे। तब वेदव्यास जी ताहीं आये। सो श्री आचार्य जी महाप्रभून को अपने साथ ले आये। पाछे वेदव्यास जी ने श्री आचार्य जी महाप्रभून सों कह्यो जो तुम ने श्री भागवत की टीका कीनी है सो मोकों सुनावो। तब श्री आचार्य जी महाप्रभून ने युगल गीत के व्याख्यान को एक श्लोक कह्यो। सो श्लोक

वाम बाहु कृत वाम कपोलो वलितभ्रू ...धरार्पित वेणुम्।
कोमलाङ्गुलिभिराश्रित मार्गं गोप्य ईरयति यत्र मुकुन्दः॥

या श्लोक का व्याख्यान कर्यो सो तीन दिन ... पूरो भयो। तब वेदव्यास जी ने बिनती करी जो मैं या भागवत के व्याख्यान को अब तारतम्य करि सकत नाहीं तातें अब क्षमा करो। पाछे श्री आचार्य जी महाप्रभून ने वेदव्यास जी सों कह्यो जो तुम वेदांत के ऐसे सूत्र कहा कीये जो मायावाद पर अर्थ लग्यो। तब व्यास जी ने कह्यो जो मैं कहा करूँ मोकों आज्ञा ही ऐसी हुती सो ऐसे अर्थ करिये। तब श्री आचार्य जी महाप्रभून ने कह्यो जो मैं ब्रह्मवाद पर अर्थ किये हैं सो व्यास जी को सुनायो सो व्यास जी सुनकर बहुत प्रसन्न भए।"

(... वार्ता ... पृष्ठ ...)

इस विद्यालय ... इस प्रसंग की कल्पना पर कोई विवाद नहीं कर सकता। वार्ताकार ने वल्लभ सम्प्रदाय वालों ... प्रयोजन से ... इसने भी प्रसंगों की ... है परन्तु जो इस सम्प्रदाय से अलग थे और जिनके प्रभाव इस सम्प्रदाय के उत्कर्ष में बाधक प्रमाणित हो सकता था अथवा हो सकता था उनकी निन्दा और अपमान करना ... उद्देश्य ... पड़ता है। वृन्दावन के रूप सनातन के प्रभाव से ब्रज मण्डल में वल्लभ

चुका है और हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि उनमें अधिकांश पद मीराँ की रचनाएँ नहीं हैं, परन्तु कुछ विशेष कारणों से मीराँ के नाम से प्रचलित ह गई हैं। अन्य पदों के सम्बन्ध में भी हमें बहुत कुछ इसी निष्कर्ष पर पहुँचन पड़ता है। मीराँ का प्रभाव क्षेत्र गुजरात से लेकर बंगाल तक रहा है, अत एक प्रांत में मीराँ के सम्बन्ध में जो रचनाएँ होती थीं वे अन्य क्षेत्र में मीराँ क रचना समझ ली जाती थी। इसका एक उदाहरण 'साहित्य रत्नाकर' नाम संग्रह-ग्रंथ में मिलता है, जिसमें देव रचित दो कवित्त मीराँ की रचनाएँ मा ली गई हैं। सम्भव है इस प्रकार के और भी कितने उदाहरण हों। इ विस्तृत प्रभाव-क्षेत्र के कारण एक ही पद भिन्न-भिन्न प्रांतों में भिन्न भिन्न र धारण कर लेता है।

परन्तु मीराँ की पदावली में अप्रामाणिक पदों की मिलावट का सबसे न कारण यह है कि उत्तर-पश्चिम भारत में मीराँ माधुर्य भाव की भक्ति की प्रती हैं जिस प्रकार कबीर निर्गुण भाव की भक्ति के। पीछे के संतों ने जिस प्रक 'कहै कबीर सुनो भाई साधो' लिखकर कितने ही निर्गुण पदों को कबीर रचना में शामिल कर दिया, उसी प्रकार 'मीराँ के प्रभु गिरधर नागर' लिख कितने ही लीला और मधुर भाव के पद मीराँ के नाम से प्रचलित कर दि गए जो मौखिक परम्परा में प्रचार पाकर आज मीराबाई की रचनाएँ सम जाने लगी हैं। आज मीरा के नाम से जो सैकड़ों पद मिलते हैं वे सभी - मधुर भाव की प्रतिमा मीराँ की रचनाएँ नहीं हैं, वरन् मीरा की भक्ति-भाव के प्रति श्रद्धा रखने वाले एक समुदाय की रचनाएँ हैं जिसमें मीरा प्रत रूप में विद्यमान हैं। अत वैज्ञानिक दृष्टि से मीराँ के नाम से प्रसिद्ध अ कांश पद अप्रामाणिक अवश्य हैं, परन्तु भावना की दृष्टि से उन सभी पदों मीराँ की रचना मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए क्योंकि प्रतीक रू वे मीराँ की ही रचनाएँ हैं, केवल शब्द-रचना मीराँ की नहीं है।

दूसरा अध्याय

भक्तियुग और मीराँ

हिन्दी के भक्त कवियों में मीराबाई का एक विशिष्ट स्थान है। इस महान कवयित्री के प्रति हिन्दी संसार की उदासीनता अद्भुत अवश्य है, परन्तु आश्चर्यजनक नहीं। जिनकी कविता में साहित्यिक कृत्रिमता का लेश भी नहीं, जिन्होंने जनसाधारण को आकर्षित करने का कोई प्रयास नहीं किया, केवल अपनी भक्ति-भावना के उल्लास में भक्ति और प्रेम के मधुर गीत गाए, अपने हृदय के विधुर प्रेम का भार ही हलका किया, जिनकी कोई शिष्य परम्परा नहीं, जिनका कोई अपना सम्प्रदाय नहीं, उनके प्रति यदि हिन्दी संसार उदासीन है तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। परन्तु हिन्दी प्रान्त के बाहर हिन्दी की इस मधुर गायिका का सबसे अधिक मान और प्रचार है—गुजरात और बंगाल में मीराँ के गीत घर घर गाए जाते हैं। राजस्थान की तो मीराबाई सर्वस्व ही हैं। हिन्दी में सूर, तुलसी, कबीर और विद्यापति के युग की भक्ति भावना का जैसा शुद्ध और मधुर स्वरूप मीराँ के पदों में मिलता है वैसा अन्यत्र कहीं दुर्लभ और अप्राप्य है।

१

भारत की धार्मिक प्रवृत्तियों का अनुशीलन विश्लेषण करने पर सर्वप्रथम हमें धर्म के उन आचारों और उपासनाओं के दर्शन होते हैं जो वेद और ब्राह्मण ग्रन्थों में कर्म काण्ड के नाम से प्रसिद्ध है। इसका प्रारम्भ ऋग्वेद की उन ऋचाओं से माना जा सकता है जिनमें उषा, वरुण, इन्द्र, मरुत्, अग्नि आदि नक्षत्रों की दैवी शक्तियों की प्रशस्तियाँ मिलती हैं, जो अथर्ववेद में उतर कर जादू और टोना के रूप में परिणत हो जाता है और जिसका चरम विकास ब्राह्मण ग्रन्थों में होता है जहाँ विविध यज्ञों तथा यज्ञों

सोलहवीं शताब्दी में सगीत का पुनरुत्थान हुआ था। जौनपुर के इब्राहीम शाह शर्की तथा उसके पौत्र हुसेनशाह शर्की के दरबार में भारतीय सगीत की विशेष उन्नति हुई थी। इसी शर्की सल्तनत में कड़ा मानिकपूर के शासक मलिक सुलतान शाह के पुत्र मलिक बहादुरशाह ने एक वृहत् सगीत सम्मेलन का आयोजन कर 'सगीत-शिरोमणि' नामक ग्रथ (रचना काल १४२८) प्रस्तुत कराया था। इसी समय मेवाड़ के स्वनामधन्य महाराणा कुम्भा भी बड़ा सगीत प्रेमी, गायक और वीणा वादन में निपुण प्रसिद्ध हुआ है। उसने सगीत-शास्त्र पर'सगीत राज' नामक ग्रथ की रचना की, साथ ही साथ सगीत-रचना भी 'सगीत- रत्नाकर' तथा 'गीतगोविन्द' की टीका के रूप में उपस्थित की। लगभग उसी समय निधुवन के स्वामी हरिदास, जो प्रसिद्ध गायक तानसेन के सगीत-गुरु प्रसिद्ध हैं, तथा बैजू बावरे भी भारतीय सगीत की धारा बहा रहे थे। मुगल सम्राट अकबर भी भारतीय सगीत का प्रेमी था और उसके दरबार में तानसेन, रामदास और उसके पुत्र सूरदास जैसे प्रसिद्ध गायक रहते थे। वल्लभाचार्य के शिष्यों में कितने ही प्रसिद्ध गायक थे। संगीत के उस पुनरुत्थान काल में हिन्दी साहित्य में भी संगीत-प्रधान गीति-काव्य-शैली का खूब प्रचार हुआ। हृदय के धर्म भक्ति की अनुभूतियों और भावनाओं की सरस धारा प्रवाहित करने के लिए यह काव्य-रूप अत्यत उपयोगी भी प्रमाणित हुआ। फलतः उस काल मे, जिसे साहित्य में भक्तिकाल की सज्ञा दी गई है, हिन्दी कविता में गीति-काव्य-शैली का बोलबाला था।

गीति-काव्य सगीत-प्रधान तो होता ही है, उसकी सबसे बड़ी विशेषता उसकी अतर्मुखी प्रवृत्ति है। साधारण गीति-काव्यों मे यह अतर्मुखी वृत्ति कवि के व्यक्तिगत अथवा उसके नायक और नायिका के सुख और दुःख, आशा और निराशा, भय और पीडा, क्रोध और घृणा इत्यादि की सहज और सगीतमय अभिव्यक्ति करती है। परतु कुछ गीति ऐसे भी होते हैं जहाँ कवि की अतर्मुखी वृत्ति उसकी व्यक्तिगत अथवा काल्पनिक नायक-नायिका की लौकिक भावनाओं और अनुभूतियों का अतिक्रमण कर अलौकिक के क्षेत्र मे जा पहुँचती है, जहाँ लौकिक और साधारण सुख-दुःख के स्थान पर। अलौकिक और असाधारण

आनंद और वेदना की अभिव्यक्ति होती है; जहां साधारण संयोग और वियोग की अनुभूतियों के स्थान पर स्वयं भगवान से संयोग और वियोग की साधनामयी अनुभूतियों की अभिव्यंजना होती है। इस प्रकार के गीतिओं को महत् गीति-काव्य की संज्ञा दी जा सकती है। इनमें भगवान के लिए पागल हृदय की अस्पष्ट और अव्यक्त ध्वनि सुनाई पड़ती है।

हिन्दी साहित्य में महत् गीति काव्य की रचना करने वालों में मीरा अद्वितीय हैं। पद-रचना में सूरदास और मैथिल-कोकिल विद्यापति ने भी अद्भुत कौशल प्रदर्शित किया है, परन्तु सीधे हृदय पर चोट करने वाली रचना मीरा के ही कंठ से निःसृत हुई थी। जहां सूर और विद्यापति के पदों में ब्रज की गोपियों अथवा राधा के सम्भोग और वियोग की आनंद और वेदनामयी अनुभूतियों की सरस अभिव्यक्ति हुई है वहां मीरा के पदों में स्वयं मीरा की विरह-व्यथा साकार हो उठी है। सूरदास के मुक्तक पदों और गीतियों के भीतर एक कथा की धारा अंतःसलिला सरस्वती की भांति बहती रहती है और उसी प्रसिद्ध कथा के सहारे उन पदों का सौन्दर्य परखा जा सकता है, इसी प्रकार विद्यापति के पदों में भी नायिका-भेद की परम्परा का सहारा लिए बिना उनकी रमणीयता भली प्रकार स्पष्ट नहीं हो पाती, परंतु मीरा के पदों में कथा का न कोई अंतर्भाग है, न किसी साहित्यिक परम्परा का सहारा है। वहां मीरा की भावना सीधे मीरा के हृदय से, उनके अंतरतम प्रदेश से निकलती है, इसीलिए उसका प्रभाव भी अधिक पड़ता है। मीरा के पदों में सरलता है, स्पष्टता है और है सीधापन (directness)। परन्तु इन पदों की सबसे बड़ी विशेषता है स्वच्छंदता। वह युग-युग से चली आती काव्य-परम्परा से स्वच्छंद है, भाषा और छंद, भाव और अनुभूति किसी का भी [illegible] के बंधन में नहीं है। परन्तु मीरा की स्वच्छंदता राग [illegible] नहीं है, वह एक निर्झरिणी की निर्मल धारा की स्वच्छंदता है, जिसमें [illegible] है, एक अबाध गति है, कूलों की सीमा का उल्लंघन करने का एक उन्माद है; परन्तु जिसमें [illegible] नहीं, अश्लीलता नहीं, विद्रोह की भावना नहीं।

मीराँ की भक्ति-भावना की स्वच्छदता ने, जिसमें लोक-लाज नहीं था, समाज का भय नहीं था, काव्य-कला में भी इसी प्रकार की स्वच्छंदता ढूँढ ली थी। भाषा, छद और काव्य-परम्परा सबमें मीराँ ने एक स्वाभाविक स्वच्छदता प्रदर्शित की है।

१

भाषा—मीराँबाई के पद वर्तमान रूप में तीन भिन्न भाषाओं में मिलते हैं। कुछ पदों की भाषा पूर्ण रूप से गुजराती है और कुछ की शुद्ध ब्रज भाषा है, शेष पद राजस्थानी भाषा में पाये जाते हैं, जिनमें ब्रजभाषा का भी पुट मिला हुआ है। पता नहीं मीराँ के मूल पद किस एक अथवा किन-किन भिन्न भाषाओं में लिखे गए थे, परन्तु इस समय उनमें स्पष्ट तीन भाषाएँ हैं। ऐसा भी सम्भव है कि सचमुच ही तीन भिन्न भाषाओं में लिखी गई हों क्योंकि मीराँ गुजरात में काफी दिनों रही थी, ब्रज में भी उन्होंने लगभग पाँच-छः वर्ष बिताए थे और राजस्थान में तो वे पैदा हुई थीं, वहीं ब्याही गई थीं और जीवन का अधिकाश भाग वहीं बिताया था।

ब्रजभाषा तथा ब्रज-मिश्रित राजस्थानी भाषा में विरचित मीराँ के पदों में भाषा का आडम्बर तनिक भी नहीं है। जायसी, कबीर तथा अन्य सत कवियों की भाँति मीराँबाई भी परिष्कृत तथा पूर्ण साहित्यिक भाषा नहीं लिख सकती थीं, ऐसी बात नहीं है, वरन् इसके विपरीत कुछ पदों में मीराँ ने ऐसी परिष्कृत तथा शुद्ध साहित्यिक ब्रजभाषा का प्रयोग किया है जो पिछले खेवे के कवियों के लिए आदर्श मानी जा सकती है। उदाहरण के लिए देखिए

मन रे परसि हरिके चरण ॥ टेक ॥
सुभग सीतल कँवल कोमल, त्रिविध ज्वाला हरण।
जिण चरण प्रहलाद परसे, इन्द्र पदवी धरण।
जिण चरण ध्रुव अटल कीने, राखि अपनी सरण।
इत्यादि [मी० पदा० पद स० १]

अथवा छाँड़ो लँगर मोरी बहियाँ गहो ना।
मैं तो नार पराये घर की, मेरे भरोसे गुपाल रहो ना।

जो तुम मेरी बहियाँ गहत हो, नयन जोर मोरे प्राण हरो ना।
बृन्दावन की कुंज गलिन में, रीत छोड अनरीत करो ना।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल चित टारे टरो ना॥
[मी० प० पद सं० १७२]

ौर भी सखी मेरी नींद नसानी हो।
पिय को पंथ निहारत, सिगरी रैन बिहानी हो॥
सब सखियन मिलि सीख दई मन एक न मानी हो।
बिन देख्या कल नाहिं, जिय ऐसी ठानी हो॥
अंगि अंगि व्याकुल भई, मुख पिय पिय बानी हो।
अंतर वेदन बिरह की वह पीर न जानी हो॥
ज्यूँ चातक घन कूँ रटै, मछरी जिमि पानी हो।
मीराँ व्याकुल बिरहणी, सुध बुध बिसरानी हो॥
[मी० प० पद सं० ८७]

सी प्रकार और भी कितने पद हैं जो सरलता और स्पष्टता, मधुरता और ोमलता में हिन्दी साहित्य में अतुल हैं। सूर और मतिराम, रसखान ौर घनानंद की ब्रजभाषा भी इतनी मधुर और स्पष्ट नहीं है। परंतु ीरों की भाषा का स्वच्छंद प्रवाह देखना हो तो देखिए :

जोगिया री प्रीतड़ी है दुखड़ा री मूल।
हिल मिल बात बणावत मीठी, पीछे जावत भूल।
तोड़त जेज करत नहिं सजनी, जैसे चमेली रे फूल।
मीराँ कहे प्रभु तुमरे दरस बिन, लगत हिवड़ा में सूल॥
[मी० प० पद सं० ७८]

अथवा मेरे परम सनेही राम की नित ओलूँड़ी आवे॥ टेक॥
राम हमारे हम हैं राम के, हरि बिन कुछ न सुहावे।
आवण कह गए अजहुँ न आए, जिवड़ो अति उकलावे।
तुम दरसण की आस रमइया, निस दिन चितवत जावे॥
[मी० प० पृ० सं० [illegible]]

और भी   प्रभु जी थे कहाँ गया नेहड़ी लगाय ॥ टेक ॥
छोड गया विस्वास सँगाती, प्रेम की वाती बराय ॥

अथवा   नींदलडी नहिं आवै सारी रात, किस विध होइ परभात ॥

मीतड़ी और दुखडा, ओलूँडी और जिवडो, रमइया और सँगाती, नेहड़ी और नींदलडी इत्यादि शब्दों में कितनी स्वाभाविक रमणीयता है। अनगढ और बीहड चट्टानों पर उछलती हुई जल की धारा जिस प्रकार मधुर संगीत उत्पन्न करती है, मीराँ की स्वाभाविक भाव-धारा भी इन अनगढ और स्वाभाविक शब्दों में उसी प्रकार का संगीत उत्पन्न करती है। यह स्वच्छंद संगीत-धारा केवल मीराँ के ही पदों में मिल सकती है जो यमक और अनुप्रास के आडम्बर से उत्पन्न हुई संगीत से कम मधुर नहीं है। यह सत्य है कि

ललित-लवंग-लता-परिशीलन कोमल मलय समीरे।
मधुकर-निकर-करम्बित कोकिल कूजित कुंज कुटीरे

की कोमल-कांत-पदावली अत्यंत मधुर है, परंतु मीराँबाई की :

राम मिलण रो घणो उमावो, नित उठ जोऊँ बाटड़ियाँ।
दरस बिना मोहिं कुछ न सुहावै, जक न पड़त है आँखड़ियाँ।
तलफत तलफत बहु दिन बीता, पडी विरह की पाशड़ियाँ।
अब तो वेगि दया करि साहब, मैं तो तुम्हारी दासड़ियाँ।
नैण दुखी दरसण कूँ तरसैं, नाभि न बैठे साँसड़िया।
राति दिवस यह आरति मेरे, कब हरि राखै पासड़ियाँ।
लगी लगन छूटण की नाहीं, अब क्यूँ कीजै आँटड़ियाँ।
मीराँ के प्रभु कबर मिलोगे, पूरो मन की आसड़ियाँ।

[मी० पदा० पद सं० १०८]

स्वच्छंद वेग से बहने वाली पदावली भी सच्चे रसिकों के लिए कम मधुर और आकर्षक नहीं है।

मीराँ की भाषा में अलंकरण नहीं, सजावट नहीं, वरन् एक स्वच्छंद

आवेग है। भाव की स्वच्छता के साथ स्वाभाविकता, परिष्कार के साथ अनलंकरण मीराँ की भाषा की विशेषता है।

छंद—मीराँ के पद पिंगल के नियमों को दृष्टि में रखकर नहीं लिखे गए थे। उन पदों की गति और संगीत में मीरां के सरल और सुंदर भावों का स्वाभाविक संगीत मिलता है, जिसका कोई नियम नहीं। भावों के अनुरूप ही छंद की गति बदलती रहती है। देखिए :

करणाँ सुणि स्याम मेरी,
मैं तो होइ रही चेरी तेरी।
दरसण कारण भई बावरी बिरह बिथा तन घेरी।
तेरे कारण जोगण हूँगी दूँगी नग्र बिच फेरी।
कुंज सब हेरी हेरी॥
अंग भभूत गले म्रिग छाला यो तन भसम करूँरी।
अजहुँ न मिल्या राम अबिनासी, बन बन बीच फिरूँरी।
रोऊँ नित टेरी टेरी॥ [मी० पदा० पद सं० ७४]

इसका पहला चरण १२ मात्रा का है, दूसरा १८ मात्रा का, तीसरा और चौथा १६+१२ मात्रा का और पाँचवा १३ मात्रा का है। इस प्रकार स्वच्छंद भाव से छंदों की गति बदलती रहती है। भाषा की भाँति मीराँ के छंद भी स्वच्छंद हैं।

कला—मीरा के पद नायिका भेद तथा अन्य साहित्यिक परम्पराओं से ही मुक्त नहीं हैं, उनमें ध्वनि और व्यंजना, रीति और वक्रोक्ति, गुण और अलंकार की काव्य-परम्परा का भी निर्वाह नहीं है। यों तो कुछ पदों में रूपक[1]

1. रूपक (क) असुवन जल सींचि सींचि प्रेम बेलि बोई।
अब तो बेल फैल गई आनंद फल होई।
(ख) [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

उपमा[1] और उत्प्रेक्षा[2] आदि अलकारों की झलक अवश्य मिल जाएगी और प्रसाद गुण तो मीराँ की कविता का प्राण ही है, परतु ये सभी विशेषताएँ सुदर काव्यों म साधारण रूप से पाए जाते हैं, कला के रूप में मीराँ में इनका लेश मात्र भी नहीं है। और ये जा थोडे अलकार मिल भी जाते हैं वे प्रायः अपवाद-स्वरूप ही हैं, क्योंकि इनकी सख्या नगण्य है। सच तो यह है कि जहाँ हृदय की अत्यत मार्मिक वेदनाओं और गूढ भावा को खोल कर रखना पडता है, वहाँ गुण और अलकार, ध्वनि और वक्रोक्ति आदि काव्य-कला की परम्पराओं की कोई उपयोगिता ही नहीं, कोई सार्थकता ही नही, वहाँ तो कविता-सुदरी अपने सरल स्वाभाविक वेश में ही अत्यत आकर्षक जान पडती है।

भारतवर्ष में बहुत प्राचीन काल से ही काव्य में कला की प्रधानता स्वीकार की गई है। इसी कारण प्राय. सभी कविया म कला का गहरा रग पाया जाता है। परतु मीराँ की कविना म इसका अपवाद मिलता है। अधे कवि सूरदास ने विरहिणी राधिका के अगों की श्रीहीनता दिखलाने के लिए काव्य-परम्परा का सहारा लेकर लिखा है .

तब ते इन सबहिन सचु पायो।
जब ते हरि सदेस तिहारो सुनत ताँवरो आयो।
फूले ब्याल दुरे ते प्रगटे पवन पेट भरि खायो।
ऊँचे बैठि बिहग सभा बिच कोकिल मगल गायो।
निकसि कदरा ते केहरिहू माथे पूँछ हिलायो।
वन गृह तें गजराज निकसि कै अँग अँग गर्व जनायो॥

---

[1] उपमा-(अ) नानो नाम कों मोसू तनक न तोढयो जाइ।
पानाँ ज्यूँ पीली पडी रे, लोग कहैं पिंट रोग।
(ब) प्यारे दरसण दीज्यो आय, तुम विन रह्यो न जाय॥
जल विन कँवल, चंद विन रजनी, ऐसे तुम देख्यां विन सजनी।

[2] उत्प्रेक्षा जबसे मोहिं नदनदन दृष्टि पड्यो माई।
तबसे परलोक लोक, कछू न सुहाई।
कुंडल की झलक अलक, कपोलन परछाई।
मनो मीन सरवर तजि, मकर मिलन आई।

और जानकी के विरह में राम के मुख से तुलसीदास ने भी इसी प्रकार की कला की करामात प्रकट किया है जब कि राम कहते हैं :

> कुंदकली दाड़िम दामिनी, कमल, सरद ससि, अहि भामिनी।
> श्रीफल कनक कदलि हरषाहीं, नेकु न संक सकुच मन माहीं।
> सुनु जानकी तोहि बिनु आज . हरषे सकल पाइ जनु राजू॥

इस 'रूपकातिशयोक्ति' अलंकार का आनंद सहृदय चाहे जितना ले लें परंतु राधिका तथा राम के विरह की अभिव्यक्ति इसमें नहीं के बराबर हुई है। मीरा को अपनी विरह व्यथा प्रकट करनी है, इसीलिए उन्हें श्रीफल, दाड़िम और दामिनी तथा व्याल, कोकिल और केसरि की प्रसन्नता की ओर देखने का अवकाश भी नहीं मिलता; उन्हें तो अपनी ही विरह-व्यथा से छुट्टी नहीं मिलती। वे कितने सरल ढंग से अपनी विरह-व्यथा कह डालती हैं :

> मैं बिरहणि बैठी जागूँ, जगत सब सोवै री आली।
> बिरहणि बैठी रंगमहल में मोतियन की लड़ पोवै।
> इक बिरहणि हम ऐसी देखी अँसुवन की माला पोवै।
> तारा गिण गिण रैण बिहानी सुख की घड़ी कब आवै।
> मीरा के प्रभु गिरधर नागर मिल के बिछुड़ न जावै

इस स्पष्ट सरलता में जो सौन्दर्य है वह अलंकार के आडम्बर में कहाँ। इसी प्रकार नंदनंदन से अभिन्न जान बादल की प्रीति देख कर सूरदास की प्यासी गोपियाँ उपालम्भ-स्वरूप कह उठती हैं :

> बरु ये बदराऊ बरसन आए।
> अपनी अवधि जानि नँदनंदन गरजि गगन घन छाए।
> सुनियत हैं परदेस बसत सखि सेवक सदा पराए।
> चातक कुल की पीर जानि कै तेउ तहाँ तें धाए।
> द्रुम किए हरित हरषि बेली मिलि दादुर मृतक जिवाए॥

परंतु मीरा का ध्यान तो अपने गिरधर नागर पर ही लगता है; उन्हें बादल और चंद्र, मोर और पपीहा आदि की ओर देखने की इच्छा भी नहीं, वे सदा

अपने गिरधर के प्रेम की उनसे तुलना क्यों करने चलीं। वे तो सारे संसार को भूल कर एक उसी नागर की रट लगाए हुए हैं :

म्हाँरो जनम मरन को साथी, थाँने नहिं विसरूँ दिन रातीं।
तुम देख्याँ बिन कल न पड़त है, जानत मेरी छाती।
ऊँची चढ चढ पंथ निहारूँ, गय रोय अँखियाँ राती।
× × × × × ×
पल पल तेरा रूप निहारूँ निरख निरख सुख पाती।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर हरि चरणाँ चित राती॥

और इसीलिए प्रकृति के नियमानुसार वसंत ऋतु में मधुवन को विकसित और पल्लवित देखकर सूर की गोपियों की भाँति वे इस प्रकार कोसती नहीं कि '

मधुवन तुम कत रहत हरे।
विरह वियोग स्यामसुंदर के ठाडे क्यों न जरे।

उनके अंतर में तो श्याम-विरह के अतिरिक्त और कोई भाव ही नहीं है। ईर्ष्या और द्वेष, मोह और मत्सर, क्रोध और घृणा सब इस विरह की बाढ में बह गया है :

राम मिलण के काज सखी, मेरे आरति उर में जागी री॥ टेक॥
तलफत तलफत कल न परत है, विरह बाण उर लागी री।
निसदिन पंथ निहारूँ पीव को, पलक न पल भरि लागी री।
पीव पीव मैं रटूँ रात दिन दूजी सुधि बुधि भागी री।
विरह भवँग मेरो डस्यो है कलेजो, लहरि हलाहल जागी री॥

मीराँ के विरह की यह एकनिष्ठा कला का उपहास-सा करती है, क्योंकि साधारण व्यथा और साधारण प्रेम तो कला की करामात से, वक्रोक्ति और व्यंजना से, उपमा और उत्प्रेक्षा से रमणीय, चमत्कारपूर्ण और आकर्षक बनाए जा सकते हैं, परंतु जहाँ प्रेम का अपार सागर है, जहाँ उमड़ती हुई वेदना की एक बाढ है, वहाँ कला और कौशल की पहुँच भी नहीं हो पाती। जहाँ अंतरतम की पीडा और आनंद की अनुभूति की अभिव्यक्ति करनी पड़ती है, वहाँ रस, और अलंकार ध्वनि और व्यंजना, रीति और वक्रोक्ति आदि सबका अतिक्रमण कर सरल और स्पष्टतम शब्दों का ही सहारा लेना पड़ता है। मीराँ

ने अपनी उसी अंतरतम की व्यथा का सरलतम और स्पष्टतम शब्दों में अभिव्यक्त किया। यह कला से अतीत और काव्य-परम्परा से स्वच्छंद महत् गीति-काव्य की रचना मीरा की अपनी विशेषता है।

मीरा के पदों में सबसे अद्भुत और अपूर्व कौशल यही है कि उनकी समस्त रचना कला के आडम्बर से रहित है। जैसा कि गुजराती के प्रसिद्ध लेखक श्री कन्हैयालाल मुंशी ने लिखा है, कलाविहीनता ही मीरा की सबसे बड़ी कला है। वक्रोक्ति जीवितकार ने कवियों की रुचि और प्रवृत्ति-भेद के अनुसार तीन मार्गों की कल्पना की है। कुछ कवि सौकुमार्य प्रवृत्ति के होते हैं और उनका मार्ग सुकुमार मार्ग[1] कहा गया है; कुछ कवि वैचित्र्य से रुचि रखते हैं और विचित्र मार्ग[2] के पथिक हैं, कुछ इन दोनों के मध्यम रुचि के होते हैं और अपनी कविता में इन दोनों का समन्वय करते हैं। हिन्दी साहित्य के अधिकांश कवि विचित्र मार्ग के पथिक हैं। रीतिकालीन साहित्य में वक्रोक्ति और वैचित्र्य का ही प्राधान्य है। भक्तिकाल के अधिकांश कवियों ने मध्यम मार्ग का अवलम्बन किया है। सुकुमार मार्ग के पथिक कवि हिन्दी में बहुत ही कम हैं और इन कवियों में मीराबाई सर्वाग्रणी हैं।

---

1 सुकुमार मार्ग की रचनाओं में कवि-कौशल आहार्य (कृत्रिम) नहीं होता वरन् स्वाभाविक होता है। उनमें स्वभावोक्ति की प्रधानता हो जाती है और जो अन्य अलंकार आते हैं वे पृथक् प्रयत्न के परिणाम न होकर बिना प्रयास ही आ जाते हैं और अत्यंत स्वाभाविक होते हैं। इन रचनाओं में रस का प्राधान्य रहता है, रसध्वनि अधिक पाए जाते हैं यथा माधुर्य, प्रसाद, लावण्य (शब्दों का सुंदर चयन) और आभिजात्य (smoothness) आदि गुणों की विशेषता होती है।

2 विचित्र मार्ग में वक्रोक्ति और वैचित्र्य का प्राधान्य होता है, कृत्रिमता और [illegible] होता है। सभी अलंकार लाने का प्रयत्न और पृथक् प्रयास पाया जाता है। इसमें अलंकार का प्राधान्य रहता है और अलंकारध्वनि अधिक पाए जाते हैं। इसमें माधुर्य, [illegible], प्रसाद, [illegible] और [illegible] शब्दों का सुंदर क्रम और [illegible] होता है।

उपसंहार

हिन्दी के श्रेष्ठ कवियो में मीराँबाई का स्थान बहुत ऊँचा है, परतु कितने ही लब्धप्रतिष्ठ समालोचक मीराँ को कवि मानने को भी तैयार वे तो उन्हें केवल एक प्रसिद्ध भक्त मात्र स्वीकार करते हैं। 'मीरा कं साधना' नामक आलोचना ग्रथ के रचयिता महोदय भी मीराँ को कवि मानते क्योंकि एक स्थान पर वे लिखते हैं "मीरा न कबीर की भाँति ई। थो, न जायसी की तरह कवि ही। वह एक मात्र प्रेम की पुजारिन १ ना कबीर को ज्ञानी और जायसी को कवि समझते हैं उनके लिए तो बाई सचमुच ही न तो ज्ञानी हैं न कवि क्योंकि उन्होंने न तो कबीर की 'अटपटी बानी' कही और न जायसी की भाँति असम्भव अतिशयोक्ति भरमार की। मीराँ ज्ञानी नहीं थीं, इसे मानने में किसी को विशेष अ नहीं होगी, परतु कवि तो मीराँ के समान हिन्दी मे बहुत ही कम हु यदि वाग्विदग्धता और उक्ति वैचित्र्य ही काव्य का मानदड है तो प अवश्य कवि हैं और मीराँ जायसी की तरह कवि नहीं, परतु कविता कहीं महत् और ऊँची वस्तु है। जो कविता में कला की खोज करते हैं अलकारो और वक्रोक्तियो को ही कविता मानते हैं, उन्हें मीराँ के निराशा ही होगी, परतु जो कविता को कला से परे, अलकारो के आ से अतीत, हृदय की स्वाभाविक और सरस अनुभूतियो की सरलतम स्पष्टतम अभिव्यजना के रूप में समझते हैं, उन्हें मीराँ के पदों में उ कोटि की कविता के दर्शन होंगे। मीराँ के पदों जो अद्भुत और अपूर्व उनकी कलाविहीनता है उसे हमारे विज्ञ समालोचकों ने अत्यंत समझ रक्खा है। कला की अभ्यस्त आँखों को कलाविहीनता का स्वाभ सौन्दर्य जैसे आकृष्ट नहीं कर पाता, उसी प्रकार काव्य-कला की परम

---

१. मीरा की प्रेम-साधना—प्रथम सस्करण पृष्ठ स० ८३।

हृदय पंडितों को मीराँ की कलाविहीनता नहीं जँची। इसी कारण मीराँ को हिन्दी साहित्य में जो उचित स्थान है वह आज भी उन्हें नहीं मिला।

विरह निवेदन में मीरा के पद अद्वितीय हैं। 'दरद दिवाणी' मीराँ ने विरह की जैसी सच्ची और उत्कृष्ट व्यंजना की है, वैसी व्यंजना अन्य किसी भी कवि की वाणी में नहीं हुई। मीराँ ने अपनी विरहाग्नि की ज्वाला का प्रतिबिम्ब अपने चारों ओर फैले विस्तृत प्रकृति में नहीं देखा चंद्र की शीतल किरणों ने, शीतल कुंजों में मंद-मंद बहने वाली सुगंधित वायु ने, मुसकाते हुए कुसुमों ने उनकी विरहानल को उद्दीप्त नहीं किया सावन की रातें उन्हें सावन के दग्ध के समान नहीं जान पड़ीं, पलास के 'निरधूम अंगार' युक्त डालों पर चढ़कर जल मरने की इच्छा उन्हें कभी नहीं हुई, सारांश यह है मीरा को अपनी विरह-व्यथा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त होकर नहीं दिखाई दी। इसका कारण यह नहीं था कि मीरा का विरह अत्यंत साधारण कोटि का था, वरन् इसका एक मात्र कारण यही था कि वह अत्यंत गम्भीर था। उग्र विरह में बाह्य वेदना ही अधिक होती है अंतर्वेदना कम, इसी से विरही [illegible], सारे संसार को ज्वालामय और भस्म होता हुआ देखता है, और स्वयं भी नित्य जलता रहता है। इसी विरह के कारण जायसी की विरहिणी चिल्लाकर कह उठती है :

लागिउँ जरै, जरै जस भारू, फिरि फिरि भूँजेसि, तजिउँ न बारू।
सरवर हिया घटत निति जाई, टूक टूक होइ कै बिहराई।
बिहरत हिया करहु पिउ टेका, दीठि दवँगरा मेरवहु एका॥

इसी विरह से पद्माकर की विरहिणी गोपियाँ भगवान कृष्ण को संदेशा भेजती हैं :

ऊधौ यह सूधो सो संदेसो कहि दीजो जाइ,
ब्रज में हमारे ह्याँ न फूले बन कुंज हैं।
किंसुक, गुलाब, कचनार औ अनारन के,
डारन पै डोलत अँगारन के पुंज हैं॥

और इसी विरह से सूरदास की विरहिणी गोपियाँ बिलखती हैं :

विनु गुपाल बैरिनि भई कुजे ।
तब वै लता लगत अति सीतल, अब भई विषम ज्वाल का पुर्ज ।

परतु जहाँ विरह बहिर्मुखी न होकर अतर्मुखी होता है, जहाँ वह अतर गम्भीर महासागर की भाँति ऊपर से शात किंतु भीतर ही भीतर आन्दोलि होता रहता है, वहाँ बाह्य वेदना नहीं होती अतर्वेदना भीतर ही भीतर अपन काम करती है, वहाँ शरीर भाड के समान नहीं जलता, कुजें ज्वाल-क पुजें नहीं बनतीं, किंशुक, गुलाब, कचनार की डारों पर अगारों के पुज नह डोलते, वहाँ तो मीराँ की भाँति

अगि अगि व्याकुल भई मुख पिय पिय बानी हो ।
अतर वेदन विरह की वह पीर न जानी हो ।

का अनुभव होता है और विरहिणी केवल इतना ही कहती है कि

प्यारे दरसण दीजो आय, तुम बिन रह्यो न जाय ।
जल बिन कँवल, चद बिन रजनी, ऐसे तुम देख्याँ बिन सजनी,
याकुल व्याकुल फिरूँ रैण दिन, विरह कलेजो खाय ।
दिवस न भूख नींद नहिं रैणा, मुख सू कथत न आवै बैणा,
कहा कहूँ कुछ कहत न आवै, मिलकर तपत बुझाय ।

यह वेदना अनिर्वचनीय है । मीराँ का विरह अतर्मुखी था, बहिर्मुखी नहीं इसी कारण उनका विरह निवेदन अन्य हिन्दी कवियों के साधारण विरह वर्णन से बहुत भिन्न है । सम्भवतः इसीलिए हिन्दी के कितने ही समालोचको ने मीराँ का विरह वर्णन पसद नहीं किया । 'मीरा की प्रेम-साधना' के रचयिता की सम्मति है कि "हिन्दी साहित्य में विरह के सर्वोत्कृष्ट कवि जायसी हुए[1] ।" इसका अर्थ यह हुआ कि जायसी का विरह-वर्णन सूरदास, विद्यापति और मीराँ से भी उत्कृष्ट है । यहाँ भी ऐसा जान पड़ता है कि जायसी की वाग्विदग्धता और अतिशयोक्तिपूर्ण उक्तियों से प्रभावित होकर विज्ञ समालोचक ने ऐसी बात लिख डाली है, नहीं तो कहाँ मीराँ और कहाँ जायसी ।

[1] 'मीरा की प्रेम-साधना' पृष्ठ स० ७।

हिन्दी साहित्य के कवि-गायकों में मीरा का स्थान उच्चतम है। गीति-काव्य की रचना करने वालों में हिन्दी के तीन कवि—विद्यापति, सूर और मीरा—बहुत सफल हुए हैं। इनमें सूरदास में अद्भुत व्यापकता है तो मीराँबाई में अपूर्व गम्भीरता, विद्यापति के पदों में अनुपम माधुर्य भरा है तो मीराँ के पद सहज स्पष्टता और स्वच्छन्दता में अद्वितीय हैं। मीरा की रचनाएँ परिणाम में अधिक नहीं हैं, परन्तु जो थोड़ी रचनाएँ प्राप्त हैं, गेयता और गम्भीरता, सरलता और स्पष्टता में वे अतुलनीय हैं।

मीरा के स्फटिक तुल्य स्वच्छ हृदय पर भक्ति-युग की सभी विशुद्ध भावनाओं का प्रतिबिम्ब पड़ा था। कबीर और रैदास की निर्गुण ज्ञान-भक्ति से लेकर चैतन्य और चंडीदास के राधा-भाव तक की सभी विशुद्ध भक्ति-भावनाएँ मीरा की कविता में एक साथ ही मिल जाती हैं; साथ ही कबीर का अटपटापन, तुलसीदास की साम्प्रदायिक संकीर्णता और जयदेव तथा विद्यापति की परम्परागत अश्लील व्यंजनाओं का उसमें लेश भी नहीं है। यह सत्य है कि मीरा में वह पाण्डित्य नहीं, वह विद्या बुद्धि नहीं, वह साहित्यिक शैली नहीं, परम्परा से प्राप्त वह कला की भावना नहीं जो सूरदास, तुलसीदास और विद्यापति की कविताओं में मिलती है, परन्तु जहाँ तक विशुद्ध नारी-हृदय और नैसर्गिक प्रतिभा का प्रश्न है, वहाँ मीरा इन कवियों से किसी प्रकार हलकी नहीं ठहरतीं। मीरा का साहित्यिक मूल्य सूर और तुलसी के समकक्ष यद्यपि नहीं है क्योंकि इन्होंने सूरसागर की भाँति अथाह और असीम रस-सागर का निर्माण नहीं किया और न 'रामचरित-मानस' की भाँति निष्कलुष पवित्र मानस की रचना की, परन्तु गिरिशिखर से उतरने वाली निर्मल निर्झरिणी के स्वच्छन्द प्रवाह और कलकल शब्द में यदि कोई सौन्दर्य है तो मीरा के पदों में वही सौन्दर्य मिलता है।

समाप्त